नष्टो मोह.....

श्याटयाँ
'रखी जाती
भात कपडे
ड्डाही पे तर-
नपना ।
लाइन
सी
री
री

अथ नष्टो मोह...

कविता से सिर्फ और सिर्फ विशिष्ट कलात्मक आशयों की अपेक्षा करना कविता को उसके सहज उत्स से, परिवेश से और चेतना से भी काट कर देखना है। कविता से पहले कविता की कला देखने का ऐसा कोई भी यत्न मात्र कोष्ठकीय और आकारीय धारणा को प्रकट करता है।

कविता की कला कविता में ही सरगित होती है। कविता अपने समय की अनवरत यात्रा है। यात्रा में आनेवाले पड़ाव, मोड़ और दूरियों से ही कविता का सार्थक्य और उसकी कला रूपायित होती है। अपने समय से अलग कटकर कविता कविता हो ही नहीं सकती।

[illegible] साक्षात्कार नहीं करती, [illegible] दित नहीं होती, उन्हें [illegible] करती, इसके प्रतिकूल [illegible] कर स्वयं से ही अपरि-

चित सोच की अंधी गुहाओं में होते रहते दिशाहीन उलझाव और भटकाव को ही व्यक्त करती है, मेरे लिए ऐसी कविता और उसकी कला चिंतन और सृजन के सन्दर्भ में कोई अर्थ नहीं रखती। क्या कोई अर्थ रख भी सकती है ?

कविता समय और समाज सापेक्ष है। व्यक्ति समाज की पहली और अनिवार्य इकाई है। समय और समाज, व्यक्ति के समग्र और विराट रूप के चिंतन, जीवन और गति के ही परिचायक हैं। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि व्यक्ति-इकाई के अस्तित्व और उसकी गरिमा का कोई महत्व नहीं। व्यक्ति का अस्तित्व और उसकी गरिमा समग्र विराट की सहभागिता के रूप में ही सार्थक है।

कविता मेरे लिए व्यक्ति और उसके समग्र आन्तरिक और बाह्य विराट को पहचानने की प्रक्रिया रही है। व्यक्ति से मेरा अर्थ अपने समग्र विराट के सन्दर्भ में अपनी सामर्थ्य और दुर्बलता को निरंतर जाँचते रहने, संघर्ष करते रहने और रूपायित करते रहनेवाले व्यक्ति से है। यह वह व्यक्ति नहीं है जो नितान्त निजता जीता है, अव्यक्त और अरूप की साधना करता है, समाज के सम्पूर्ण साधन-श्रम-वैभव को वैयक्तिक अधिकार की सीमा में आस-पास के प्रति निरा निरपेक्ष भाव रखता हुआ भोगता है और सुविधाओं की लड़ाई लड़ता है।

यह वह व्यक्ति है जो संस्कारों-आदतों का, रूप-रंग का, आस्था, अर्चना और मान्यता का वैभिन्य रखते हुए

भी एक विराट है और यह विराट सभ्यता के पहले दिन से आज तक उपेक्षित रहा है, प्रताड़ित रहा है।

कविता के संदर्भ में जब मैं व्यक्ति को उसके समग्र विराट के साथ पहचानने की प्रक्रिया कह रहा होता हूं तो निश्चित रूप से मेरा अर्थ व्यक्ति और उसके विराट के सत्य को भी पहचानना होता है। सत्य मेरे ज्ञान तक पहुंची अब तक की सभी कल्पनाओं और भाव्यों के साथ व्यक्ति और उसके विराट में ही समाहित होता है। इसके परे का कोई भी असम्प्रेषित सत्य मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखता।

व्यक्ति निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण इकाई है। इसलिए कि व्यक्ति और उसका विराट इसी इकाई के माध्यम से अनेकानेक रंगों-रूपों में उद्घाटित, परिभाषित होता है। रंग-रूप का यह वैशिष्ट्य ही अभिव्यक्ति को रचना बनाता है, 'कला' का नाम देता है। स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म रंग-रूप शब्द के एकमात्र उपकरण से उद्घाटित होते हैं। इस कारण शब्द-रचित अभिव्यक्ति अन्य सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों में अपना प्रभाव विशेष प्रमाणित करती रही है। यह तो शब्द के धारक पर निर्भर करता है कि वह अपने शब्द को इतनी क्षमता देता है या नहीं कि शब्द उसकी अकुलाहट के पूरे आवेग के साथ एक तीव्र 'ध्यान' के रूप में ही ग्रहण होता।

इस कविता की पृष्ठभूमि, के सन्दर्भसूत्र को पकड़ने के प्रयत्न में मुझे इतना ही कहना है कि इस कविता का व्यक्ति कोई विशिष्ट मैं नहीं है। वह तो सारी सात

परिस्थितियों, शोषणों और तनावों की घात-प्रतिघातों से उपजा है। यह, वह व्यक्ति है जिसमें दुर्बलताएं हैं, अटूट सामर्थ्य है, उसकी अपनी अपेक्षाएं हैं। वह पीड़ित होता है, वह आवेशित होता है, वह सोचता है, गंभीर चिंतन करता है, और कभी-कभी अराजकतावादी शक्तियों से निर्णयात्मक संघर्ष करते हुए वैसे अराजकता की सीमा तक जा पहुंचता है, पर संभल कर लड़ता है, थकता है पर अपनी जीजिविषा को अपनी पकड़ से कभी छूटने नहीं देता। इस व्यक्ति में उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य पूरे तनाव के साथ जुड़ा रहा है।

इस कविता के माध्यम से मेरा प्रयत्न रहा कि मैं इस व्यक्ति के भीतर उतरूँ, उसके भीतर-बाहर के विस्तार को देखूं, उसमें घुलूं, जितना समेट सकूं, समेटकर बाहर ला सकूं। इस प्रकार व्यक्ति और उसके विस्तार को बाहर ला रखने का मेरा जतन उसे समस्त सन्दर्भों के साथ रख पाता है अथवा नहीं, यह व्यक्ति अपने समग्र विराट से जुड़ा हुआ है अथवा नहीं, यह विश्लेषण तो विद्वान पाठक करें।

कविता से पूर्व कथ्य के रूप में सम्मानित पाठक के सामने उपस्थित होने का मेरा उद्देश्य इतना भर स्पष्ट करना है कि मैंने इस व्यक्ति को तनाव में देखा है, तो उखड़ा हुआ भी; आवेश से सुर्ख हुआ चेहरा भी और स्वप्निल अवस्था भी। मैंने इसे निढाल क्षणों में भी देखा है और निरा तत्पर-उद्दत भी।

इस व्यक्ति की सारी प्रक्रिया को व्यक्त करने का मैं माध्यम बना हूँ। यहाँ मुझे यह भी कहना चाहिए कि

इस व्यक्ति को रूपायित करते समय में कविता अथवा लम्बी कविता के शिल्प और रूप-विधान के साँचे विशेष से बँधा नहीं रहा हूँ। शिल्प, रूप-विधान और भाषा उसकी सहजता से ही मिली है। कहीं कुछ कृत्रिम हुआ है या कुछ छूटा-फिसला है तो मात्र मेरी अक्षमता के कारण ही। मैं इतना सजग अवश्य रहा हूँ इस व्यक्ति के तनाव की, इसकी पराजय-हताशा की, अपेक्षा और पीड़ा की और इसकी तत्परता की प्रस्तुति मेरे माध्यम से सृजनोन्मुखी अवश्य रहे। इस सजगता को मैं अपना और इस व्यक्ति का सहज भाव मानता हूँ। यह सहज भाव ही व्यक्ति की जीविषणा है—तलाश है। इस तलाश ने ही इसे कंदराओं से आरम्भ हुई उसकी यात्रा को 'आज' तक पहुँचाया है। यह बात अलग है कि इस व्यक्ति को अपने ही विराट की सभ्यता और संस्कृति की अब तक की यात्रा में एक वर्ग बनाया जाकर उपलब्धियों के समस्त आस्वादों से वंचित रखा गया है।

वर्गभाव की व्युत्पत्ति निजता के सोच से जन्मी है। सोच की यह पहल अधिकृत होती हुई स्वयं को एक वर्ग और अपने ही मनुष्य-विराट को वर्गों, उपवर्गों में बाँटती हुई अपना वर्चस्व बनाने की ऊर्जा-स्रोत करती रही है। विचार के व्यापक अर्थ में इस प्रकार के चिन्तन और कार्य-व्यापार को भले दुर्दम, अर्थहीन और असफल कहा जाता रहे पर वास्तविकता यह है कि मनुष्य के विराट का कर्ता उसका अपना ही व्यक्ति—इस उपग्रह की आबादी का अधिकतम भाग नाटकीय जीवन जीने को विवश है। व्यक्ति के प्रति व्यक्ति की क्रूरता अपने सम्पूर्ण अतीत और वर्तमान के निर्ममतम रूपों में हमारे सामने है।

कविता ने व्यक्ति में क्रूरता के अतीत और वर्तमान को अपनी नियति नहीं माना है। वह अपने ही व्यक्ति रूप से, उसके सभी कार्य-व्यापारों और परिणामों के खिलाफ अपने विरोध के लिए खड़ा है; उसकी लड़ाई अब भी जारी है। निदान पाठक इस सन्दर्भ में कविता देख सकें, निश्चित रूप से उनके मूल्यांकन से रचना का मेरा मार्ग प्रशस्त होगा। रचाव से प्रस्तुति तक के समस्त कारण वाहकों के प्रति अपनत्व भाव। उनके लिए भी जिनसे मुझे सवाल पर सवाल मिलते रहे।

हरीश भादानी
छबीली घाटी
बीकानेर

१५ अगस्त, १९७८

सवालों के बियाबान में
सोच की
गोह और बांबियां खोज कर
ठहर जाने
और ठहराए रखने वालों के लिए

नष्टो मोहः......

नष्टो मोह......

तहा लिया करता हूँ
तुम्हारे प्रश्नाते पत्र
अपनी अँधियायी दरारों में
कि याद ही न आए मुझे
तुम्हें जवाबना

और चाहने लगता हूँ
कि मांड लिया गया हूं
रोजनामचे के जिस पन्ने पर तुमसे
लकीर ही दो उसे
मुन्नू की
पहली कापी की तरह

खतियान हो न हो जिसका
किसी कोरे पन्ने पर

ग्रौर जोड़ लगा जाग्रो
मेरे माने जाने पर
कि मैं खुद हुग्रा हूँ
भगीरथ प्रयत्नों बाद
जी लेने वाली
एक चीज !

दरगुजर कर जाग्रो
मेरे कल से
ग्राज तक का
किन्ही और-ग्रौर हाथों
कुछ से कुछ
बना दिया जाना —

ग्रावश्यकता भी क्या है
सूचनाग्रों का ज्ञानकोश
रहो तुम
कि ऐमे-ऐसे भी
हुग्रा करते हैं पुण्यात्मा (!)
त्रिकाल संध्याग्रों
पांच नमाज़ों की श्रद्धा के साथ
थोपा करते है
ग्रहसानों का गोबर
वर्तमानों पर

कमाया करते है पंचायतों से
भविष्यों के रचाव का गौरव
ग्रौर पके ग्रामों का
पूरा का पूरा बागीचा त्याग कर

अपनी पीढ़ियों के लिए
पंचभूता जाते हैं बिचारे...

कायेन मनसा बुद्धया
केवलैरिन्द्रियैरपि
योगिन कर्मकुर्वन्ति
सङ्गत्यक्त्वात्मशुद्धये
चवाते-चवाते

सही है
तसल्लीबख्श नही कर पाया हूँ
अब तक

अपना एक भी तफ़सरा

कि आदत है
मेरे घर के लोगों को
चीजें सम्हालने की

ले आया करते है घर में
करीब की चीजें भी
तमाशा न बनने देने

आदर्शियाना लगाव में;

मालूम ही होना चाहिए तुम्हें—
खुद नही घूमती चीजें
घुमाई जाती है
अपने ही प्रकार से
रख दिया जाता है मुझे
जहाँ-तहाँ
वही मान ली जाती है मेरी धुरी

घुमाए जाने का
यह प्रकार
महज दिलजोई होता है उनको
मगर मेरे लिए

इस सुबह से
पूरे दिन और रात में से
गुजर कर दूसरी सुबह
देख लेने की
बहुत-बहुत बड़ी ज़रूरत !

जोंक की तरह
चिपकादी गई
यूं चलते रहने
(चलाए जाते रहने) की
इस अनिवार्यता को
एक हिस्सा मांस के साथ
काट फेंकने
वारहा वारता हूँ खुद पर
मगर......

मेरी सम्पूर्णता से जुड़ी होती है
इसकी जड़ें

कितने-कितने लहू और
खारे पानी से भीग कर
सूख ही जाता है
ज़िन्दगी का बेहया मोह

ग्रौर जीना ही पड़ता है मुझे
एक ग्रादमक़द वह्शी, मेरे दोस्त !

जो हजारहा साल के
थेगड़ों से बने ग्रगरखे को
पहन लिया करता है
ब मुताबिक़ ग्रपनी ही जरूरीयात
कभी लाल सफ़ेद रंग कर
कभी उतार कर
मसोस लेता है ग्रपनी कांख में
हो जाता है नंगा
फिर पहन लिया करता है
कतर-सी कर मुझे ही;

इस-इस तरह
जैसा भी हो जाया करता हूँ मैं
करार देती है
यही-यही जुबान मुझे
एक ग़लत ज़िन्दगी,

ग्रौर तो ग्रौर
हरफ़ों की रूह से रू-ब-रू होकर
ख्वाबी मनुष्य का
संसार शिल्पने के दावे से
सांस लिया करते मेरे हम धर्मी ही
दर किनार देते है

केंचुलों ग्रौर
लफ़्फ़ाज़ियों के कूड़े में से

घुमाए जाने का
यह प्रकार
महज दिलजोई होता है उनको
मगर मेरे लिए

इस सुबह से
पूरे दिन और रात में से
गुजर कर दूसरी सुबह
देख लेने की
बहुत-बहुत बड़ी जरूरत !

जोंक की तरह
चिपकादी गई
यूं चलते रहने
(चलाए जाते रहने) की
इस अनिवार्यता को
एक हिस्सा मांस के साथ
काट फेंकने
बारहा वारता हूँ खुद पर
मगर……

मेरी सम्पूर्णता से जुड़ी होती है
इसकी जड़ें

कितने-कितने लहू और
खारे पानी से भीग कर
सूख ही जाता है
जिन्दगी का बेहया मोह

और जीना ही पड़ता है मुझे
एक आदमक़द वहशी, मेरे दोस्त !

जो हजारहा साल के
थेगड़ों से बने अंगरखे को
पहन लिया करता है
ब मुताबिक़ अपनी ही ज़रूरीयात
कभी लाल सफेद रंग कर
कभी उतार कर
मसोस लेता है अपनी कांख मे
हो जाता है नंगा
फिर पहन लिया करता है
कतर-सी कर मुझे ही;

इस-इस तरह
जैसा भी हो जाया करता हूँ मैं
करार देती है
यही-यही ज़ुबान मुझे
एक ग़लत जिन्दगी,

और तो और
हरफ़ों की रूह से रू-ब-रू होकर
ख्वाबी मनुष्य का
संसार शिल्पने के दावे से
सांस लिया करते मेरे हम धर्मी ही
दर किनार देते है

केंचुलों और
लफ़्फ़ाज़ियों के कूड़े में से

जुड़ाव का दाना ही
चुग लेने की मेरी तलाश
बांगा करते है
भोंपू पर मुझे
पिटवाते रहते हैं तालियों में

गिरती ही नहीं कभी
यवनिका
इस नाटक की;

विवशताओं और
विषमताओं से टाण कर
बनाई जाती है धनुपाकार
मुझ जैसी दुनियाओं की यातना
सजाई जाती है
विदेहों के दरबार में
हार-जीत होड़ते है पौरुप
मेरे बहाने
वरण लेने
सुख की गदराई हुई सीता,

कोई नही पहनता
अपने कद तक मुझे और
न ही साधे जाते है
मुझ पर से तीर

न टूटे तपस्या काले कबीलों से
आश्रमों में

राजा घड़ते रहने की
मांग लाते हैं दढ़ियल गुरू
बूढ़े पिता से कुमार सु-कुमार,

छपवा देते हैं
कलूट शरीरों पर गोरी हुकूमत
फिर बटोरते फिरते है
शौर्य्य की कीमत
ब्रह्मऋषियों से खाकर
अक्षय-अजय के
आशीर्वाद का हिस्टीरिया
तोड़ देते है मुझे

मर्यादाओं के दम्भी राम
बन जाते हैं
वैभव के पति

और खिसिया कर रह जाता है
परशुराम का विद्रोह
परशे से पोंछ कर
दिव्यावतार के जूतों को रेत
हो जाता है समर्पित
अंधे जंगल को !

बेमानी होती है उनके लिए
मेरे चेहरे की लिखावट और
दूभर हो जाता है मेरे लिए
अपने पर का सब-कुछ पोंछ पाना

फिर तुम्हें भी क्यों लगे जरूरी

एक बारगी ही पड़ जाना
मुझ पर गोद उकेर दिया जाता
यह......वह......

बार-बार टोका है मैंने उन्हें
मुझ आदम जात को
महज़ कोरा कागज मान लेने पर
पर मरजी और मौज का
धरम साधते समरथ
सुनते ही क्यों
लकीर-घसीट दिए जाने पर हुआ करती
मेरी खरखराहट
दोस्त मेरे ! एक लम्बी उमर
सटकनी पड़ी है
अपने पाताल तक
उनकी कसैली सियाही

इस तरह भी लगता रहा है मुझे
अपनी हड्डियों का भारी होना
ढाढे मारता लगा है लहू
पर उनकी नाक भी
मुझको ही जताती रही है
अपनी खास किसिम
फट पड़ने को आमादा होती
मेरी हुमक तक सूंघ लिया करती

बस प्रकट जाते मेरे सामने दैत्य
रख दिया करते पानी भरी कढ़ाई

ग्रौर थमा जाते मेरे हाथों में टाट
कि रगड़-रगड़ कर बनाया करूँ
ग्राँगन को दर्पण
देखा करूँ ग्रपना होते रहना;

ऐसे-ऐसे गीला लिया करते वे
अपना मन;
पीले चावलों का ही मान रखने
रख दी है उन्होंने
मेरे सर पर जरी की ग्रोखली
ललाट के ठीक ऊपर
खोंस दिया है छुरछुरता सरपेंच
गले के हुक में ग्रटकाकर
लटका दी है घुटनों तक
चमचम ग्रचकन
हरी-पीली रस्सियाँ

नकेल थामे मेरे त्रिकालज्ञ
फिरा लाए है मुझे मण्डपों-जलसों
उन जैसा होकर भी
नमूना बना लिया
गया होता हूँ मैं !

धकेल कर
जबरजंग पिरोल में मुझे
बांचने बैठ गए हैं वे
ग्रनाथ के नाथ होने का
ग्रभी-ग्रभी मिला
धरम लाभ का परमाण पत्र !

पत्थरों के अजूबे में धँसता हुआ मैं
आ चिपकता हूँ
जड़ाऊ आँगन पर
मालूम होता है उन्हें
खास चिपचिप रिसा करती है मुझमें से
अचकन
जरी की ओखली
हरे-पीले जेवड़े

दगिया न जाएँ मुझसे
आवाजों के प्रेत
फेर-फेर कर सूएदार अँगुलियाँ
उतार लेते हैं मुझ पर का सब-कुछ

और निकल आता है
छै आने की चड्डी
दस आने की बंडी में टँगा रहता
मेरा असली मैं !

यह सब
देखने की जहमत से
निहायत परहेज रखते हुए
खपचियों से जुड़े मेरे वुजूद पर
लगातार
सवाल दाग़ते रहने वाले मेरे दोस्त
तू ही बता न
कैसे पहचानूँ अपने-आपको
किससे पूछूँ
मैं यह हूँ अथवा वह;.

क्यों बचाली जाती है
देह से देह रगड़ लेने की भूख
जिसका परिणाम हो जाया करता है
एक मैं
कई-कई मुझ जैसे मैं !

अपनी ही दुनियां के
खुमते रंगों से
भागने वालों के जुलूस से
आत्मविभोर कर्म धनी
कमा लेते हैं पुण्य
उठाकर दया धर्म की सीढ़ियों पर से मुझे
बजा देते हैं
झालर मजीरों में उनका वीतराग होना;

उनके कीर्तन में से ही
चुग-बीन कर अक्षर
चीख गया हूँ मैं
कितने पित्तर नर्क चले गए होते
कौन से नाले में
डूब गई होती यह धरती
जो न बनाते
अपनी रगड़ का
एक परिणाम—मैं

लौट कर मुझे ही पीटा है
मेरी चीखों ने
जहां-तहां कटा-फटा पसर गया हूं

पत्थर के पलंग पर मैं
उतर आया है आकाश अँधेरा होकर

आँसू छोट-छोट कर भी
देख लिया है मैंने—

पोंछ दिया है तुमने
दही से लदपद मुन्नू
जगा बुझाकर अपनी आँखें
भर दी है मीठी सुपारी
पाँव पीटती गुड़िया के मुंह में

निहोरे का निवाला छोड़
भाग गया है बबलू
मार देने एक चौका,
मैं भी खोजने लगता हूं बल्ला
मार जाऊँ छक्का
कि तड़ाक से टूट जाए
मेरे आगे रहा करती
काच की दीवार
और खोल दूं अपने मुंह का ब्रह्माण्ड
कौर बंधे तुम्हारे हाथ के सामने

इस तरह देख जाओ तुम भी
एक किसिम ललक—भूख
आग…रगड़ वाली भूख
से निरी अलग
एक और प्यास !

भला नहीं लगता
पत्थर के पलंग को भी
मेरा यूं उड़ान भर लेना
उगा लेता है अपने पर हाथ
उखाड़ लेता है मेरी पाँखें
और ला खड़ा करता है मुझे
समझ के ओझाओं के सामने

एक पैमाना उठाए
समझाने लगते है वे मुझे
एक फार्मूला—
दहाई को
दहाई का गुणक
गुणनफल बटा मियादी हुंडी
या चैक
बराबर जीवित शरीर
वराहमिहिर और
आर्य भट्ट हो जाते हैं
लगाव के चेहरे
आश्रम हो जाया करता है घर
अलबीरुनी और नार्लीकर से भी
आगे...और आगे
ऊर्ध्वमुख की जा रही
इस फार्मूले की पैमाइश
मगर मैं
गणित का यह आंकड़ा सीखने की

हर पसीना भर कोशिश में
बना पाता हूँ
केवल भद्दी तस्वीरें
राम राजों—सायरसों की
सिकंदर गजनियों
कारूओं-निज़ामों की
एलिजाबेथों और ओनासिसों को

कहाँ से दूं
तुम्हें चश्मा
मेरी इस आदिम समझ पर
बदल-बदल जाया करते
घरवालों के
तेवर देख लेने,
उझक-उझक आया करना है
मास्टर के डंडे सा उनका हाथ
रह जाता है
ठहठहा कर ही
याद जो आ जाता है उन्हें
मेरा एक चीज़ भर होना,
मगर उनकी यह हँसी
दो माना बस की तरह
गुज़र जाती है मुझमें से,
इनकी गो-मुग्नियों से
फिर भी क्षण
वितृष्णा की बाढ़
आ जाने की आशंका भर से
भुरभुरा जाता है—

मेरे भीतर
एक पिता एक पति
एक आदमी
और इन सबके बीच सहमी सी
सम्बन्ध की अबोध एषणा !
चूंकि मेरी उन्हें
और उनकी मुझे
बरतने की संज्ञा
होती रहती है सम्बोधन !
उठ-उठ जाता है
मेरा झुका चेहरा
भीतर से उलीच कर आग
अपने जैसे ही
इन शरीरों के सामने
फेंक देने;
पर हथेलियां भर लाती है
मुझ में
पानी ही पानी सींच गए
लोगों की यादें,
निचोड़ लिया करता हूँ ख़ुद को
और कुरेदा करता हूँ
अपने भीतर
आहिस्ता-आहिस्ता
बुझता चूल्हा
इस-इस तरह

कई तहों बरफ जाती
मुझ पर चुप,
घर भी तो होता है आश्रम
ड्रेसिंग टेबल खनखनाकर
संकेत देता है
कमरों में ऊँघता

दया ममता का रूमान
लगातार दाँत चबाए जाने का
परिणाम,

और हाथों में ले आते है
चीजें सम्हालने का
अपना लगाव
मेरे घर के दानिशमंद लोग
रख देते हैं दराज में
वराह मिहिर और आर्यभट्ट को;
बकौल उनके
जो भी होता है मुझमें
लवण-लोह
जलवायु
वात पित्त कफ़
चर्बी आदि-आदि की
कुल जमा बनती है
निरीह निरामिष प्रकार की चिड़िया

सिद्धार्थ हो जाते हैं वे
सहला देते हैं

मेरे चेहरे के घायल कबूतर को
अदेखा असमझा रखने
तुमसे और
मेरी ऊँचाइयाँ लाँघ रहे
हम-रूपों से
निराकार के साकार   और फिर
अ-कार होते रहने का
यह गुर कि—
मान लिया गया है
घाटियो ही घाटियों के सौर मंडल मे
जिसे सूर्य
किया करती है
जहाँ की दुनियां
पिता-पति के अर्घ्य दे देकर
जिसकी परिक्रमा
वही हाँ वही मैं
उनके और अपने बीच
खोदकर हजार मील
लम्बी खाई
संवाद होने की सम्भावना पर ही
उठाकर
सुलगते हुए चुप का एक पहाड़
हर रोज झुका दिया करता हूँ
अपनी गर्दन,
झटके से हलाल देती है मुझे

अलादीन का चिराग घिसकर
फरसराम हो गया
फूसिया,
हाथों में नचती
हिपो-क्रेसी की तलवार से
और निवाला हो जाता हूँ मै
पहुँच जाता हूँ
ढलानों पर त्राटक साधे रहती
अपनी दुनिया तक,
रसायनों के घोल की ही
कारगुजारी है, मेरे अजीज कि—
क्षत-विक्षत मुझ पर
रख दिए जाते है
आइंस्टीन और
रसल की उदारता के
गुनगुने फोहे,
मर मर कर भी जी जाया करता हूँ मैं
मगर नही माना जाता तब भी
किसी भी तासीर के
सत्य का होना मुझ में,
बहानों से
मरहमा दिए जाने पर
लगता है मुझे
सालारजंग का
जीवित संग्रहालय है मेरा घर

यथावत हैं जहाँ आज तक
गई गुजरी शताब्दियाँ,
गजर से गो धूली तक
होती रहती है खटनी
देश-विदेश
अनुभवा कर भी
इसी मुआफ़िक हो आया कर
जम्बू-द्वीपे
भरत-खण्डे के भविष्य;
अनश्वर रखने
हमारी अनादि संस्कृति,
और लोग···
लोग कम कम्प्यूटर है
पिन से
हिमालय तक की पहेलियों के उत्तर
पोर से
भू मध्य रेखा की लम्बाई
पैसे का चक्रवर्ती ब्याज
टपटपा देते है
होठों का बटन हिलाकर,
उनके हाथ जगन्नाथ
उनके पाँव दामन
उनका रोम रोम समझदार
वे तीनों गुण
वे पाँचों तत्व
वे संदीपन द्रोणाचार्य

चाणक्य बिस्मार्क
वे कलाएँ और विज्ञान
जनक जननी भी
रिश्ते-अ-रिश्ते भी वे
औचित्य-अनौचित्य भी वे
वे इकाई में दहाइयाँ
और मैं—
एक—मान लिया गया
कुछ भी नही,
उफ ! कितना बड़ा घटाटोप
कौन से सूरज की कैंची
कहाँ से कहाँ तक
कतरेगी इसे ?
यही हाँ यहीं
हो जाता हूँ मैं निपट अकेला
आँखें गड़ाए रहती है मुझ पर
मियादी हुंडी और
चैक पर बैठी हुई गणित,
एक से बिन्दी तक
पसरा यथार्थ
फटकता रहता है
अपनी अनिवार्यता का चाबुक
मेरे होने के नैरंतर्य पर;
बहियों से बहियों तक बने
रास्तों पर
गुमास्ता होकर न भाग पाने की

मेरी एक असामर्थ्य को
धकिया दिया जाता है
ओसामू दजाई के रास्ते,
जानता हूँ—
हाराकीरी तक ही जाता है
यह रास्ता
फिर भी हाँक दिए जाते है
इस ओर
मेरे जैसे अनेक-अनेक संसार,
मंत्रित नहीं कर पाए जो
गणित की जड़ता से, वे
न सुन्दर हुए
न ही शिव
(सत्य तो होते ही कैसे)
और अलगा गए
थमक कर जो
करार दिया गया है उन्हे
तीसरा आदमी
हाँ, तीसरा आदमी
दाग़ दिया जाता है जिसे
कभी सुकरात, कभी गैलिलियो
खुदीराम कन्हाई
कभी लुमुम्बा चे-ग्वेवारा
एदित के नाम से
और होने लगता है जमात
जब भी यह तीसरा आदमी

गभा तक पोंछ दी जाती है उसको
यूनान से इटली
जलियांवाला—स्टालिनग्राद में
अल्जीरिया, कांगो, क्यूबा
इंडोनेशिया, कोरिया से
वियतनाम बंगाल तक
बुहार दिया जाता है कचरा
गर्भाशय तक
धो दिए जाते हैं बारूद से
फ़सल ही न हो
फर्ज़ सो मौसम,
फिर भी कर लिया करते हैं जो
हिमाक़त—
जीने के लिए
दिए गए सामान का
रंग रोगन खुरचने की
झुला दी जाती है इन पर
गलफांसियां
किसी भी क्षण
खींच लिया जाए ऊपर से
गांठ लगा सिरा
गले की सीध पर...
और इस तरह
एक के बाद एक संसार
अपनी बहन अपनी बेटी
अपने किसी अजीज़ के नाम

पथरा जाता है
खत लिखता-लिखता !
जी लेनेवाली चीज़ को
माना है तुमने यदि एक संसार,
बहुत सम्भव है
पहुँच ही न पाए
दुनियादारी के तुम्हारे पाताल तक
इस हश्र आते-आते
चीख होकर
डूब जाने वाली मेरी आवाज
और मेरे दोस्त !
मेरे जीने पर
बारहा टकरा जाया करते
हमखयाली के
तुम्हारे सवाल को ही
पढ़ना पड़ जाए
यकबयक चुप हो गए
मेरे संसार का भी
एक और अधूरा खत
अधूरे खत
ऐसी-ऐसी इतनी दुनियाओं के
बांच लेने का अर्थ
चिपक जाना नहीं है
इतिहास के गोंद से
देख लेना है
पीढी दर पीढ़ी रवायात की विरासत

दलदलो जमीन
टेढ़ी धुरी
घुने हुए पहिए;
यही है मेरी उम्र ! मेरा भविष्य !!
हाथ भर-भर
रंग दिए जाते हैं जिस पर
गणराज्य
समाजवाद के लौंदे
एक हजार
आठ सौ पचीस दिन बाद ही
पोंछा पूछा जाए मुझे
गरीबी हटाय की झाड़न से
मेरा हम-गम हो जाने
हिला भर जाएँ वे अपने सहस्रबाहु
अलमबरदारों
चिलमगीरों के सामने—
बेदखल कर दिये जाने
मेरी बस्ती से
हैजों मलेरियों टी० बी० यों के
नाजायज कब्जे
बचाते ही रहें अपनी मुलायम नजर
ऊपर से सपाट
मगर बीच आते-आते
खाली कढ़ाई हो जाती मेरी देह से
देखे ही नहीं वे
अभावों के कैंसर से
कुतरा-कुतरा जाकर

बांबियां हो गया मेरा शहर !
मेरा संसार !!
एक चिथड़ा कागज़
थमा कर
बना जाया करें मुझे
ठप्पा लगाने भर तक का विधाता !
और होता ही रहूँ मैं
शेखचिल्ली की तरह
खुशहाली का बग़लगीर !
फिर भी
पाव भर गेहूँ...चना...
एक शीशी करासन का आलम खरीदने
गठिया-गठिया जाता
शरीर ढोकर भी
रख दिया करता हूँ अपनी आँख
कल के रंग से
बुझे हुए तुम्हारे दमाग पर;
और बुलवा देता हूँ
सात-सात स्वरों में
लोहे के शरीर
उजालने लगता हूँ
रिस रिस आते
गुनगुने पानी से
पत्थर इस्पात के सांचे,
गुदगुदाता ही रहता हूँ

रेत में अँगुलियां कि
मेरी ऊँचाई से
ऊपर उठ जाए जमीन,
हँसिया सान-सान कर
बनाया करता हूँ
हरे पीले पहाड़
सांस-सांस बुनता हूँ
कपास,
घिसता ही रहता हूं
मोटे तिनके की नोक कि
सुबह शाम तो
बज ही जाया करे
न सही सितार सारंगी
इकतारा ही मेरे आंगन !
मगर यूं पेर-पेर देने पर भी
जितना बनता है मुझ से
सरका ले जाते हैं
तहखानों में
कानूनी अधिकार के
लम्बे लम्बे हाथ,
भिभोड़ते रहते हैं
संसद के सीखचे
जीने की पहली मांग के
छोटे-छोटे संसार;
सुनी जाने वाली होती ही नहीं
आवाज
मेरे टकराते रहने से

फिराता रहता हूं अँगुलियां
सूजन चढ़ी पेशानी पर,
करने देता हूं परिक्रमा
निष्पृह
निष्पाप होकर
व्यवस्था का मांस भोगते
सृष्टाओं की,
नहीं हुआ करता मैं
सामने होता हुआ भी;
निगल जाया करते हैं
जल-भ्रूण
कटे-फटे कनारों से
समंदर की नीलाइयां झोलने
निकल जाया करती
मेरी नौकाएं,
ठूंस देते हैं
मेरे मुंह में
हंगामों के टेढ़े हाथ
झपट ले जाते हैं
चीख लेने की मेरी हसरत भी
कहीं गहरे
बहुत गहरे डुबो देने !
फिर सालिगराम के नाम से
पूछने आते हैं मुझे
बुद्ध लिंकन
पोप गांधी के जेबी संस्करण

ऐयाश सलवटों पर
भव्यता की भस्मी
पोते रहने वाले परम हंस
थमा देते है मुझे
सजिल्द संविधान का वरदान—
भाष्य के अनुसार
मैं ही होता हूं भोक्ता
भारतीय औरत के साथ
सात फेरे खाया पति
लोकसभा बकिंघम पैलेस का
मिंक कोट मर्सीडीज का
स्काईलैब जम्बू जेट
पानी की निगहबानी में तैरते बेड़ों का
हथियारों के
ओझाओं-झाड़ा गुरुओं की
मिसाइली मूठ को
ना-मूठ करने
धरती के क्रोड़ में
बनाए गए रक्षा-घरों का,
मेरी है मेरी
रामलीला मैदान के मंच से
एम्पायर स्टेट बिल्डिंग की
छत तक की
इतनी बड़ी जागीर
जगाते हैं
मेरे लिये
मुर्दा-पोथियों से

बुनियादी अधिकारों के प्रेत
जब चाहूँ
मांड लिया करूँ
मध्यावधि चुनाव का अखाड़ा
बिछा लिया करूँ
दस बीस करोड़ के गलीचे
कील दूं
अदल-ए-अवाम की कुर्सी
बैठ जाया करूँ
मलिका-ए-मोअज्जमा होकर,
हो लिया करूँ
इक्काए हुक्काम
क्रेमलिन—व्हाइट हाउस का
किया करूँ डायल
हॉट लाइन;
जूते से पीटी जाने वाली
मेज सुनने वाला
ऊंधा हो जाया करूँ
और भेजता रहूं जुगराफिया के खरीते—
अ अफ्रीका
ब बियाफ्रा
क कोरिया व वियतनाम
द बांग्ला देश के बाबत
संयुक्त राष्ट्रों के नाम;
और मैं
इन सब नौटंकियों को
करता रहा हूँ मुखालफ़त

केवल झंडों तख्तियों का
धरनों जुलूसों
लफ्फाज़ विरोधों-ज्ञापनों का
एक ग्रोर
मजमां बिछा कर;
नसों का तनाव
न सम्हाल पाने पर
जब-जब भी तोड़ी है मैंने
बांध-बांध दी जाती
इनकी दफ़ाएं
भेज दिया गया है मुझे
लखटकिया हवेली में
बामशक़्क़त ग्रारामने,
ग्रौर बना दिये जाने
ता उम्र का दाग़ी मुजरिम
हाजिर किया जाता है
ग्रदालतों में
बा ग्रदब
सर निगूं
बिछाया करते है
न्यायमूर्ति के हुज़ूर में
मेरे पहरेदार
करोड़-करोड़ लोगों की खुशहाली
खैरख्वाही के लिए
पाक ईमान से

सर-अंजाम किए जा रहे
इन्तिज़ामात
उसूली सियासत
और आईना से पा-बंद
हुकूमत के खिलाफ़
की जा रही
खिलाफ़वर्जियों की
मेरी फ़ेहरिस्त—
चावल-बंदी तोड़ी है इसने
'कल्लोल' और 'तीर'
का पोस्टर होकर चिपक गया है
शहर की दरो-दीवार पर यह,
रेत को पानी
न दिए जाने पर
लगान मरोड़ ली है
इसने अपनी अंटी में
रोक दी है कलम
सरकार बहादुर के अमले की
बिला टिकट पहुँचा है
गांव से
आला हुजूर की ड्योढ़ी पर,
शहर कोतवाल ने सूंघे है
जलाए गए डाक घर
इसके शरीर से
इसके हाथों में ही
देखी गई है
उखाड़ी गई रेल की पटरियां

हर रोज
ट्राफिक रोक देता है
हर सांझ
जा धँसता है मैदानों में
रास्ता ही नहीं रहता
टहलकदमी
हवाखोरी की खातिर
पेशे-नजर है, हुजूर
रोमिला की कितबिया के ये सफ़े
पूना के छापखाने से बरामद
यह इश्तिहार,
इसी के दमाग़ का खलल है
'कुकड़ूँ कूँ'
यही छापता है
काले हासिये…कोरे अखबार,
कोई तमीज़ नही करता है
देश और
समाजवाद में
उलटे पढ़ता है
योजनाओं के ब्ल्यू प्रिंट;
ठीक मनु के ही माप से
महत्मा और
नेहरू की बल्लियां लगाकर
पेंतीस माला ऊंचा दी गई
भूगोल पर की
इस बहतरीन व्यवस्था मे

दीमक ही दीमक देखता है
यह दिनौंधा,

सर्वेभवन्तु सुखिन···
योगक्षेम महाम्य···के
सलीकों के खिलाफ़
तर्रार और भोथरी जुबान
सिखाता है
छोटी-सी दिल्ली में
कभी ७२ एशिया
कभी भारत ७५
तो कभी ७७ का संसार नक़्क़ाश कर भी
गेट बाहर रह जाती
नंगे बदन
महनतकश जमात को;

देखता ही नहीं
आँख उठाकर यह
पुरी के जगन्नाथ की तरह
घिसट-घिसट कर
लाया जा रहा
बदलाव के पचास पहियों वाला
पवित्र रथ;

मुट्ठी-भर आला दमाग़
नाजुक हाथों में
लम्बी वजनी रासें
इतना बड़ा देश
और हुज़ूर! साठ करोड़ लोग!

सदियाँ चाहिए सदियाँ
इतनी रोटियां
इतने पानी के लिए !

इस तरह
पोंछते हैं अपना पसीना
साधते हैं उखड़ती सांस
मुझ जैसी बदमिजाज और
खुराफ़ात जमात को
सख्त से सख्त सजा
तक्सीम किए जाने की गुजारिश के साथ
माहिरे कानून
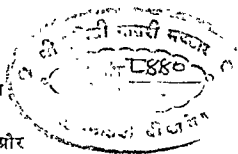
और उठा देते हैं
गवाहों ही गवाहों के पहाड़
सुबूत दिए जाने मेरी बग़ावत;

सुनता रहता है
मचान पर बैठा काला चोगा,
कंठ की सीध में
तिरछी बँधी

दो सफेद वल्लियाँ
करती रहती हैं इशारे...समझो !
सफाई बघारने से पहले
तख्ते-अदल के पीछे झूलती
आशीर्वाद देती
राष्ट्रपिता की पाँच अँगुलियों में
बहैसियत
जोड़ कर शून्य

मार्फ़त से
भुगतान करने का मायना;

न्याय के मंदिरों में
गिनती के बाटों की
इतनी बड़ी अहमियत
और वह भी
ज़िन्दगी के तक़ाज़ों के मुक़ाबिले !
बदहवास हो जाता हूँ मैं
पीटने लगता हूँ कठघरा—

२२ फुट की बांबी में
उडेलना दो मुट्ठी चावल
तस्कर है !
फिर कौन से स्वर्ग के लिए
बटोरते है पुण्य
धानमल गोदाम वाला
गन्नापत चीनी वाला
रेतीलाल सिरमट चंद ?

क्यों नही देखती है इन्हें
आपकी खुर्दबीन ?
बहियों और
तिजोरियों का
तिलिस्म तोड़ कर
क्यों नही रखते इन्हें चौराहों पर ?
पहना क्यों नहीं देते है
इन्हें लोहे के कंगन ?

लोहे के लावा से नहा कर
राख हो जाती
आदम जात की कीमत में
चार कागज
बांट कर
कौन-सा परमिट जोड़ता है
इस्पात वाला
काच के कमरे में,

मछलियां पालती है
जो योजना रेगिस्तान में
वहीं हाँ वही
ठूंठ हो-होकर क्यों गिरते रहते हैं शरीर ?

अकाल राहत के
सावन को
शहर के घर में
मस्टर रोल पर ही
कैसे बरखा लेती है
मुस्तैद कारीगरों की मुहिम ?
फिर भी कैसे जुड़ जाता है
हजार-हजार गांवों में
जलते कलेजों के
ठंडा जाने का आंकड़ा ?

आंखों को
बत्ती सी बना लेती है अदालत
पीटने लगती है
लकड़ी का हथौड़ा न्याय की मूर्ति,

पर उगलता ही रहता हूँ
मूडी फांकने वाला सड़काऊ मैं
ज़िन्दगी की
हक़ीक़त के "अंगार" !

और इस सारे आलम को
जेब केवल जेब का
ज़खोरा बताने वाले मुझ
मामूली राम को
पिला ही दिया जाता है
किताबें दुह-दुह कर
निकाला जाता
हुकूमत और अम्न के ख़िलाफ़
संगीन ही संगीन
जुर्मों का अपराधी
करार दिये जाने का
दूध का दूध और पानी का पानी !

बा खबर है
मेरे घर के लोग और
मेरे जीने को सवालते रहने वाले
मेरे दोस्त
तुम भी कि—
नंगे अदम और ईव की
सोलोमन सीजर
द्रौपदी आम्रपाली
रजिया विक्टोरिया की
हिटलर मुसोलिनी तोजो की

गोयवल्स-मैकार्थी
सालाजार डलस की,
सात पहरों में आजाद हरमों-बुर्कों की
नाराज हिप्पियों
मिनीस्कर्ट
हाट पेंट की ओर
थेगड़े लगी मेरी भी
पोशाक दर पोशाक में
अपोलो-सोयूज से
चाँद की चौखट पर पहुँचाने वाले
इन्ही नियामकों ने रची है
ये सम्भावनाएं
फक़त मेरे लिये,
संरक्षक भर हैं ये
मुझ जैसी
ना बालिग दुनियाओं के;

कैमेरा नहीं रहा
कभी मेरे पास
तस्वीरें ही भेज देता तुम्हें
इनके गोल-गोल काँचों में
अपने ही लहू से अलग
लीक लिए जाते निजीपन की
वड़ी आंत से
कंठ तक आ पके
अहम् के हाड की
देख-रेख कर
काले-पीले संसार

झड़ता ही रहता है किरकिराकर......

सर्वधर्मान्परित्यज्य

मामेकं शरणमव्रज

अहं त्वा सर्व पापेभ्यो

मोक्षयिष्यामि मा शुचः

अक्सर

विधान सभा

हो जाया करता है मेरा घर

मगर मैं

मनोनीत किया जाकर भी

बैठता हूं बाएं

स्वाद बदलने भर को ही

बहसियाने के बाद

जुबांदराजी का

तगमा टांक देता मुझ पर

घर का खजाना गुट्ट

व्यवस्था जो हांकनी होती है उसे,

बालिग हो आने

कर दिया जाता है घोषित

यज्ञों और योगों की

आयोगों-आयोजनाओं

सेमिनारों और समारोहों की

सिफारिशों को

फाइलों तक लाकर

फफुंदिया

या फिर कुतर दिये जाने तक

कर्मकाण्डों के
दण्डकारण्य मे निष्कासन
मुझ जैसी दुनियाओं का,

शिखंडी और
वृहन्नलाएं

बनाए रखने
बुनते रहते हैं
अक्ल की बारीकियों के कोट
जूते......दास्ताने......

और इसी जंगल राज्य को
कहा करते हैं ये
सोने की चिड़ियाओं
करोड़-करोड़ देवताओं
दानियों का स्वर्ग !

सूरज से पहले
चिल्लवा दिया जाता है जहाँ
सरकारी गजट

छपे होते हैं
खुशफहम
खुराक विशेषज्ञों के आंकड़े
महज एक करोड़ पढ़े-अधपढ़े ही
चप्पलें चटखाते हैं
घरों से दफ्तरों तक
आधी से भी कम रह गई है
अँगूठा लगाती आबादी

फक़त पचीस करोड ही रहे है
एक ही हरफ का मीनू फाँकने वाले,
एक करोड़ भिखारियों
डेढ करोड़ अंधों
बीस लाख अपाहिजों के लिए ही
उगाए जाते हैं
सुबह-शाम
बत्तीस भोजन
तेंतीस नियामतों के पहाड़
सड़कों के मुहानों पर
वैष्णवों की इस बस्ती को
नगरपाल के
बंदोबस्त द्वारा
पीताम्बर पहना दिए जाने तक
छूट होती है
हर एक को
मुंह मारते रहने की
जेवे झोलियाँ भर लेने की;
देव-दुर्लभ भोग्य को भी
नकारने लगते हैं जब
अपना सभी कुछ
हारे हुए लोग
और होने लग जाते है
बोल-बोलकर हुजूम
मानलिया जाता है
उलट देना
विक्रमादित्य की सिंहासन की बत्तीसी का—

जगा दिए जाते हैं
खतरे के लाल बल्ब

कूकते फिरते हैं सायरन
उतार दी जाती है
चप्पे-चप्पे पर
राष्ट्र रक्षा की
खाकी वर्दियाँ
बिना मुहूर्त
करना पड़ जाता है उन्हें
बेंत खीच खीच कर
भीड़ को छाँट देने का व्यायाम
इस तरह थक जाने पर
होता है उन्हें अहसास
जीव-जात के दुख जाने का
दया करते हुए
बरखाने लगते हैं
इन्द्र के अंगरक्षक
गैस के बादल
रो लेने भर का ही
पानी तो आ जाए
फैल-फैलकर सूख गई आँखों में
और सिखाने लगते हैं
सैनिक अकादमियों से
न्यौत लिए जाते मुस्तैद मास्टर
गोल-गोल जुबानों से
आवारा भीड़ को

अलकापुरी में रहने का सलीका

होता रहता है इस तरह भी
खामोश दी जाती
आवाज़ों का कचरा

बा-शिकन
भरवानी पड़ती है उन्हें
इस गैर जरूरी जहमत से
पोशाकें ढोया करती गाड़ियाँ
निबाहनी ही पड़ती है
सूख-सख्त गए कचरे को
गाड़-फूंकने की
महँगी जिम्मेदारी

और वह भी
प्रजापति के
क्रानिक जुकाम से ठस नथुनों में
ऐसी किसी भी खबर की
बदबू
जबरन घुसा दिए जाने से पहले,

भाषा पर भी
मुझ जैसी दुनिया का नहीं
कब्जा होता है
शंकराचार्यों-रजनीशों का,
अमृत कुण्ड में
नहा आये शफ़्फ़ाफ़ पुतलों का
इसलिए रू-ब-रू
मुझ जैसी दुनियाओं के

हलफ उठाकर
कलम-बंद किया है
यह बयान कि—

अपना होना बनाए रखने
पहन लिया है
जब भी इन्हें
माँस में से होकर
सिल गई हैं मुझसे
तरासनी चाही है जब-जब

चार्वाकों के च
फायरवाख के फ से
कार्ल के क
लेनिन के ल से
ये ऋचाएँ
विठा दिये गए हैं
खुफिया विशेषज्ञ
रचा करें…साजिशें
मेरे तकाज़ों के खिलाफ

जुड़ाली गई हैं
पंचायतें-विधायिकाएँ
ढाला करें
कानून-ही-कानून की वर्जनाएँ
मेरी ऊर्जा के आगे
लटका दिये है इन्होंने
चार दिशाओं-आठ खूँटों भोंपू
उगला करें—

चीख-चीख कर
अनिर्णय का अंधकार
भरम-ही-भरम
मेरे चारों ओर;

विवशताओं से
रंग बदरंग होते रहते मुझ पर
शिकना भी जाता है
इनका गाम्भीर्य
वे तार से दौड़ाते हैं अपना संवेदन
राष्ट्राध्यक्षों के
राजभवनों से आरामगाहों तक

न्यौत लेते है
सीढ़ियाँ हटाकर
लोकराज की हवेली में
शिखर-वार्ता
मेरे अभिभावक ! मेरे भापक !
मगर···बात
मेरी नही
बाजारों और हथियारों की
सीमाओं और संधियों की,
बाँग दिया जाता है खिड़कियों से
मेरे लिए

वेद-बाइबिल
अवेस्ता और
कुरान के हवालों से
दस्तखता लिया जाता तोता परिणाम

जलते कान लिए गुजरता हूँ
मंदिर-मस्जिदों
गिरजाघरों के करीब से
घंटे घड़ियाल
और अजानें
बताती हैं मुझे—

लाशों के द्वीप
बनाए जाते है जहाँ
वहीं रहने लगे है आजकल
राम···मुहम्मद···
बुद्ध···यीशू···कन्फ्यूशियस
और गाँधी
मगर अखबार में
कभी नहीं पढ़ पाता उनका वहाँ होना

हाँ, जहाँ भी मिलते हैं
इनके ढिंढोरची
लकीर देता हूँ उनके सामने
कोयले से
एक चेहरा

पहचानो !
तुम्हारी पूजा और प्रार्थना
खाते रहने के बाद भी
सुबह-शाम की खुराक हो जिसकी
कई-कई अदद आदमी
वही-वही तुम्हारा भक्त
मनु-इड़ा की ही

हू-ब-हू नकल है न !

या फिर परखनली से
निकाली गई है
इतनी बड़ी देह
या फिर गर्भ से ही
ज्ञानवृद्ध होकर जन्मते
इस एक श्रौर शुकदेव को
ना काफी लगता है
दाल रोटी फेंट कर बनाते
मास्टर का

मासा तोला ज्ञान
या मानवेत्तर मनुष्य हो जाने
बहुत-बहुत जरूरी लगता है इसे
भेड़ियों श्रौर
गिद्धों के गुरुकुलों से

संस्कारित हो श्राना
श्रौर माँजते रहना
श्रपना वैशिष्ट्य
केवल श्रादम जात पर,

प्रेत-पत्थर पूजको ! सत्ता-सूंघको !
बताश्रो, सही पहचान,
श्रपने श्रद्धास्पद की;

गूंगाए हुए वे
यहाँ-वहाँ से श्रंवेर-श्रंवेर कर
फेंक दिया करते हैं

कपास के फूल मेरी ओर
ठूँस लिए जाते
कानों-आँखों में;

इन-उनसे उकताया हुआ मैं
प्रारम्भता हूँ
अपना वर्तमान

बटोरता हूँ—
लोहे के जंगल में ईंधन
अपने अलाव की खातिर,

चूँकि नहीं लगवा सका हूँ
अपने पर
सरकारी गैर सरकारी
लगाम और खुरताल
नहीं लगा पाता हूँ
इस कारण अँगूठा
पहली तारीख़ पर

नहीं रख पाता हूँ
बीमा और गोदरेज में
थोड़ा-सा ही भविष्य
अपने बच्चों के लिए

और न ही कर पाया हूँ अब तक
नटवर लाल जो
धर्म तेजा की
मीलमल कारख़ाना लाल
दलाल चंद की कूव्वत के
आब-ए-ज़म-ज़म से

अपना काया-कल्प,
नहीं चुका पाता हूँ
बकाया हिसाब से बेड़ियाये
हाथों-पाँवों
रोजमर्रा की किश्त
अपने तक़ाज़ों की;

विरामता हूँ फिर भी
अपनी देहरी के मुहाने
पकड़े रहता हूँ
भूगोल फेरियाया मैं
चिमनियों छज्जों से
फटे तौलिये-सी ढरक आई
साँझ के पल्लू,

पढ़ लिया था कभी मैंने
टंकारता रहता था
गाण्डीव
अर्जुन के हाथों में

कम नहीं मेरी चप्पल भी
देती ही नहीं कान
रबर की तरह चिपक कर
घर में घुसा देने की
मेरी एक भी मनुहार पर
यूँ फटफटाती है

खुजला-खुजला कर कि
जाग पड़ता है
सारा पड़ौस

पलाथी लगा बैठता है
दुबका हुआ मरियल आंगन
चौकस होकर
घेराव लेती है
उदासियों से नक्शी हुई दीवारें

और मैं
मौनी ऋषि की मुद्रा में
उलट देता हूँ
रसोई की चौखट पर
नकारों ही नकारों की
मरी हुई मछलियों से भरी
अपनी जेबें,
दयाने लगता हूं फिर भी
मोहासन्न मैं—
न सही और कोई
तुम्ही देख लो, मेरे दोस्त !
प्रतिरूप और प्रतिरूपों की खातिर
उमग-उमग आती
मेरी ललक के पाँवों में
बांध-बांध दिए जाते
उपेक्षा और ऊब के तौक
निपट कोरा
मान लिया जाता
साथ की यात्रा से
सांस-सांस रंगा

उम्र का इतना बड़ा कैनवास
वे नहीं
उनके विस्मय और
प्रश्न ही देख श्रदेख गए
मेरे अक्षरों से बनता
उनका अपना ही आकार
अजनवी ही लगा उन्हें
मेरी यातना की
झील में छिलकता
उनका अपना ही प्रतिविम्ब:
न सही और, और
तुम्ही झटक दो न एक वार
तर्कों-विस्मयों की
प्रश्नों-दायरों की
यवनिकाओं में से ही
देखने की लाचारी;
भरे चौपाल
वीसियों पराजयों से
तर-व-तर भी
जीने के सनक सुलगाए
मुझ जैसे
आदमी की दुनियाओं और
वदलाव के खयाल को
अंजाम की शक्ल देने
संकल्प ही संकल्प सरजते रहने के
उनके लगाव के लिए

झाड़-पोंछ कर
बरते ही जा रहे
अपने ही लहू और
बाजार के मीजान
तुम्हीं तोड़ दो न ठीक बीच से
दोस्त मेरे!
अपने नाखूनों से ही
खरोंची जा सकती है
ढाके की मलमल से भी अधिक
बारीक नफ़ीस ये झिल्लियाँ
होती ही नही
गर्म तासीर जिनकी
बर्फ केवल बर्फ बरसाते हैं वे
और आग.........
उठाकर अपने ही आंगन से
ले जाई जाती है यहाँ...वहाँ...
सही है यह कि
झुरिया गई है मुझ पर धूप
बिवाइयां हो गई हैं
रास्ते और घाटियां
तिर आया है
चेहरों ही चेहरों से
हलचलती आँखों में
नितान्त सन्नाटा
मगर थमी रहती
फिर भी मुठ्ठियों में

चीकट मशालों को
पलीत दिए जाने की
अखूट आवाजों के
रेशे-रेशे में से होता हुआ
यह भी घटता रहता है, मेरे अजीज—
कि माना किया हूँ जिसे
प्रतीक्षा से रोशनाती कंदील
वही हाँ वही
मेरा ठेला होकर
लौटना न देख पाने पर
पीटने लगती है
आटे से भर लिए जाने वाली
खाली परात
उठा लेती है तराजू
एक पलड़े में अकेला मैं
ऊपर झूलता हुआ और
दूसरे पलड़े में होते है
हूँकते हुए खरगोश...मेमने...
मोदी खाने के आगे
लक्ष्मण रेखा
खींच आया मुनीम
दूध बंद की
बजाई जा रही तपेली
धानी आँचल सा रोशनी का बिल
और देखता रहता हूँ मैं

झुका हुआ कांटा

बीच सीध में खड़ी वीनस—
साड़ी के झरोखे में बैठा
ओखली सा पेट
सख गए दूध की छातियों के
दाएँ-बाएँ
चिपकाए दो हाथ
लेपनी रहती राख और गोबर
चेचक खुजला खजला कर
और बदसूरत हो गए
बूढ़े मकान पर
जड़े हुए है
होठों के किवाड़ उसकी माँद पर
दहाड़ने न लग जाएँ
चुप खा-खाकर अधियाये
उसके आदिवासी हरफ
कुलाचें भरना ही भूल गई
हिरनी
आँखें लगाए है झिरियों पर—
कुर्की को बारात लिए
खड़ा है नुक्कड़ पर
साहूकार का कुआँरा सम्मन
अदालती चपरास की
नौबत पड़ते ही
घर-बदर कर दिए जाने के डर से

अंवेरने लगती है
फटी-फूटी गृहस्थी के हीरे
जहाँ-तहाँ
खोंस लेती है टुकड़ा-टुकड़ा सोना।

और दस-बीस हो जाता है
मेरे ही हाथों फिसल कर
घर के पिटारे पर
लगा दिये जाने को
आतंक का मेरा ढक्कन,
गिरने लगता है ऊपर से
कलभलता
गरम पानी का सोता
थामने को मैं
उठा देता हूँ अपनी खुली हथेलियां
पर हो ही जाता है
तालाब मेरा घर
नहा-नहाकर सोचता हूँ मैं
कर ही क्या सकती है इसके सिवा
जड़ भरत की सधवा;

पी जाता हूँ
यह नीमरस हक़ीक़त कि
अगवानी थाली
निहोरे और बिछौना
गदराया शरीर
आदि अनादि भूखों की
भौतिक आधि भौतिक

सभी संक्रामक व्याधियों की
रामबाण दवा
मिलती है उसे

आता हो जिसे
लीलावती रचित भिन्न
लँगड़ी भिन्न
हल कर लेना, उसे खनखना देना;

पीलिया और
जलोदर से अधिक
दुखाता रहता है मुझे
ठूँठ बने रहते
अपने आज को
कल की धूप से
सींच देने का मेरा मोह;

हरफों का तैश तेवर
देखने के शौक में ही
रख दिया जिन्होंने कभी
ठण्डा फोहा मुझ पर
धन्वंतरी समझ लिया है मैंने उन्हें
वारहा पहुँच गया हूँ
उनके दीवानखानों को
दातव्य दवाखाना समझकर

और मेरी वदपरहेजी
और ला-इलाज मर्ज से
वेहद आजिज आ गए मेरे हकीम दोस्त

महंगे पड़ते
शौक के मलाल से
जब भी करते हैं
एक मुट्ठी भारी श्रौर
शरीर के पूरे जेनरेटर मे
धकेलते हैं मेरी श्रोर

लगता है मुझे
हहाता रहता दँतियल फाटक
यक-ब-यक
दरक श्राया है नीचे
फिंच गए हैं उनके होंठ
श्रौर मुट्ठी खुलते ही कट गया है
चमड़ी से जुड़ा
कागज का कवच,

फिर भी निगल गया हूँ
श्रपनी गूँगी निर्लज्जता में
घोल-घोलकर
चिरायते के साथ

श्रहसान दया दर्प श्रौर
कागज से बनी रत्ती-भर
उनकी संजीवनी वटी
इस तरह भी बनाए रहा हूँ
श्रपना होना मेरे श्रजीज;

न होती हो
तुम्हें जुगुप्सा
ऐसी-ऐसी दुनियाश्रों से

न लगता हो तुम्हें फिर भी
प्रभावों की
बीमारियों का
निमित्त मान लिया जाता
आदमकद पुतला···

पर समय की इस यात्रा को
कह दिया करता हूँ उम्र
दर असल कुछ नहीं
मलवा है मेरे जज्बातों का
मेरे प्रसारों का

जिसमें गड़कर
मस्तूल की तरह
बहुत ऊपर तक उठे हुए हैं वे
और नीचे
दूर तक बिखरी हुई
मेरी सम्पूर्णता
चीज है उनकी सजावट की
और निर्वाह
मेरे जैवी-व्यापारों का
सुविधा है उनकी अपनी;

नहीं ऊँचा पाता हूँ
उनकी मलँग गरिमा के मुकाबिले
श्राजुर्दगी
अपनी दुनियाश्रों की
ढाँपने लगता हूँ
अधोमुख होकर मैं

अपनी एषणाएं अपनी अपेक्षाएं

सात घोड़ों वाला रथ
लिए आ जाती है सामने
मेरे भीतर की तलाश
ले जाती है मुझे
कुरु-क्षेत्र के चौक में
उपदेशने लगती है व्यवहार गीता
फिर भी नहीं साध पाता
एक भी तीर
संशयों का मेरा सव्यसांची

झुंझलाती रहती है
मेरी बेहया मूर्खता पर
हो जाती है विराट्
मेरे और मेरे बौनों के
वर्तमान से पीड़ित
मेरी तलाश ! मेरी जीवेषणा !

टीप देती है
मेरी एक-एक नस
गदला देती है भावनाओं के फेन
बिठा देती है मुझे
झुग्गी पर, मगर···
चीज भी न रहना आता हो जिसे
ना मालूम रहे जिसे
अपना ही वजन, अपने भाव
फिर भी उसके बिकते रहने की

यानि कि बने रहने की
हो भी कैसे सकती है कोई तुक ?

आदमी तो आदमी
पत्थर पानी तक का
कभी न बंद होने वाला
बाजार फकत बाजार होती है
नपटे ध्रुवों वाली
गोल धरती,
एक ही पाँव आगे रख
हो लिया जाए जो फिरकनी
मान लिया जाए जो
घर गली
चौक को ही रूम
बिछायी जाती रहें
किसिम-किसिम की खूबियाँ—

साक्षी है—
बनिया सभ्यता का
हजार-हजार जिल्दों में
मँडता रहा इतिहास—
हुई ही नहीं है आज तक
हरफों को तरनीबने-भर में,
तिजारत की एक भी दुर्घटना;

रह-रह कर
डकराया करता है मेरा विदुर
आदिम हविश के विपरीत मुख होकर

आदमजात का
एक जैसा ही वुजूद
उनके तकाजे उनकी अहमियत
हहाते रहते हैं
मेरी टटपुंजिया असालत
अशआर पर
मामा शकुनि : दुर्योधन : दुशासन;

सांस-सांस
आराया करता हूँ मैं
क्यों नही बनाया गया मुझे ही
बर्बरीक इस महाभारत का
क्यों नही किया गया
मेरी ही गर्दन का
पहला नारियल
जीवित तो रख दी जाती
किसी पिलबॉक्स पर ही
मेरी हरकत
टकरा-टकरा जाती
गलत रणकौशल के रचयिताओं से;

मगर…
ऐसा नही हुआ करता
नही हुआ करता ऐसा मेरे दोस्त !
समझदारों से लेनी पड़ती है
आवेशों संवेगों को
मुंह बाहर करने की इजाजत
रास नहीं आता उन्हें

कोई तनाव
और होने लगती है जब भी
परिवर्तन की लड़ाई
संजय हो जाते हैं बुद्धि जीवी
मुझ तीसरी दुनिया के
बैठ जाया करते है
धृतराष्ट्रीय तंत्र के सामने
कमाया करते है पुण्य
अघटनाओं में
घटना दिए जाते मुझको
बाँच-बाँचकर

टूटा हुआ मान लिए गए
मुझ जैसे आदमी से बेजार
मेरा चिंतक
तोड-तोडकर अपना दमाग़
बनाने लगता है
कमल छाप औरोविले...

कब किस गर्भ से
हो जाए अवतार
सोलह कला निधान पूर्ण पुरुष का—
लगवाया करता है
पलाथियाँ
सम्भोग से समाधि तक जाकर
भीतर-ही-भीतर
पहचान लिए जाने
यह कुम्भी पाक;

जब-तब बोल पड़ता है इसमें
नव मानववाद का भूत
मिर्गी खा-खाकर करता है
जमीन की दलाली,
लगवाता रहता है
तीसवीं थीसिस पर
पापड़ बेल लेने के शिविर,

बड़ा कर लिए जाने
छोटे आदमी की खातिर
बुन-बुन गया वामन
एक टाट
उसी मे तोड़ता है सूत
लगाता रहता है गाँठ-पर-गाँठ
दिखाता है
रग्गों पड़ी अँगुलियाँ
चबाता ही रहता है
राजनीति की लुगदी;

पान किचरने की आदत
नही होती इनमें से जिनकी
पलारते है वे
अपनी जभें
गुटक लेने कलाओं का ज्यूसी
उतार लेते है
बदलाव और क्रान्ति के
तीसमारखाँ नही
तेंतीस मारखाँ कनटोपा

वीटी जफर रोड पर ही
जेब में रखकर
रूज और लिपस्टिक
बन जाया करते हैं क्यू
कब बुलवाले
डिंगडांग बजाकर इन्हें
बोरी बंदर की बुढ़िया,
अपनी झुरियाँ पुतवाने
कब कहला दे
सफेद बाल नोंचती मिज़ाजिन
अपने सिकटरी से
ले लिए जाने इनसे
ठर गए जबड़े में से
खीसें निपोरवाने को
दो-चार तीर तुक्के
कभी भी आ सकती है बाहर
भीतर से लाल चिट
बदहजम हो गया है लंच
गुमसुम पेट को गुदगुदवाने
फौरन से पेश्तर मंगवा ली जाएँ इनसे
बैठी ठाली अँगुलियाँ

कभी भी दे सकता है
थुल-थुल शाह
हवाजहाज का टिकिट
कविता पर
फतवा झाड़ देने की एवज में,
वापसी पर

न्योता भी जा सकता है
सफ़रनामा की खातिर,

इफ़रात से मिलते हैं
बिचौलियों को
रंग और कागज के भ्रूण
छापें और छापें छापते ही जाएँ
रंग-रंग कर
देश की हक़ीक़त-गुदाज शरीर
नीम आँखें, हार सिंगार
पकवानों के नुस्खे,
छीनते रहते है
इस तरह भी ये
छोटे आदमी से
उसकी अपनी ही पहचान
लूटते रहते हैं
बमुश्किल बीस दिन
जवान रहने वाली जेब;

इतनी जहमत उठाने के बाद भी
मिलता क्या है इन्हें
एक छोटा-सा कॉटेज
खिलौना गाड़ी
बर्फ़ बनाने वाली अलमारी
बोलता सिनेमा
फिर भी भीगा रहता है रूमाल
पोशाकों के बिल और
घुटनों चलते भविष्य को

कान्वेंट से वर्तमान बनाकर
लाते रहने की उमस से,

मौसम से राशंड
कमरों में
कमर तोड़ महनत,
मिजाजपुर्सी तो दूर
जरूरी फरमान तक को
बा-वक्त बजा लाने की खातिर
केवल झुका रहता
जाहिल अमला,
और सफर पर सफर
उफ! किस-किस तरह
झूझते रहना पड़ता है इन्हें
अपने अभावों को
भावों में बदलते रहने की लड़ाई में;

इस तरह
जिया करता है
कुरुक्षेत्र कलिंग में
सिकंदर की छावनी में
हिरोशिमा—नागासाकी
नोआखाली माइलाइ में
ढीली कीली वाली दिल्ली
मुम्बादेवी की मुंबई में
काली कलकत्तेवाली के धर्मतल्ले में
अंधा-युग
और उसका दिव्यद्रष्टा

साथ जो रहती है
अपने ही लहू में नहाती
लाशों को सीढ़ियां चढ़कर
रोटियां झपटती
लिप्सा की गांधारी;
वर्तमान और
वर्तमानों के बीच
इतने गहरे फर्क पर आवेगते
थूक झागते हुए
लगता है मुझे
नाकाफ़ी हो गया है अब
तुमसे संवाद लेने का माध्यम—
मेरी ज़ुबान,
घिसे हुए अक्षर ही
चलाया करता है
तीसरे आदमी की दुनिया में
साइन बोर्ड की सभ्यता
न्यूड क्लब की संस्कृति
प्रस्तावों और
धन्यवादों की राजनीति का खजांची
कि रगड़ ही लें इन्हें
अपनी खातिर
कोई और अर्थ उजालने
कभी तुम कभी मैं
तो कतरन भर रह जाए

कागजों पत्थरों की
बुरादा बहुत बटोर लिया है मैंने
सांचे भी हैं जज्बात के
मगर...आग
नहीं भर पाया हूँ मुठ्ठियों में,
कच्चे सामान को
कैसे बरतलूं तुमसे
अक्षरों की मानिंद इसलिए
नहो चाहता हूँ जवावना
तुम्हारे प्रश्नाते पत्र कि
ठहराव न दे जाए तुम्हें
मेरे भीतर उकेरदी गई
अजंताएं दिखाने का मेरा मोह
मेरा यह खुलासा कि
लहू की तरह दौड़ते
बदलाव के मेरे यतन को
साथ देती अगर
एक पोर रोशनी
समो जाता
दूरियां ही दूरियां,
कंदराएं होकर व्याप गए मौन को
सम्बोध दिया जाता
एक ही स्वर
भर-भर जाया करता
खाली आकाश
गूंजों प्रतिगूंजों से;

मगर मेरे मसीहा, पैरोकार और संजय
मुझ तीसरी दुनिया के
बोले ही नहीं मुझसे
कभी सामने होकर
अपने आपसे ही बोलते-बोलते
बनाते रहे है खंदकें
उगा गए हैं बर्लिन की छाती पर दीवार
निगल गए हैं
कभी कोई पहाड़
बिछा गए हैं भूरी धरती पर
भभूकती काली मिट्टी
बांट गए है मुझे
कभी उत्तर-दक्षिण
तो कभी पूरब-पच्छिम में कि—
अलगाया ही रहे
मुझ से मेरा ही हाथ
अजनबी रहे
मुझसे मेरा ही रचाव
कंगूरों-ग्लाइडरों पर बैठे
फिर भी रखते रहे है मुझ पर नज़र कि
कर जाए कभी
मेरी छाया ही
इनकी बनाई सीमा लांघने का जतन
तो बीध दी जाए बेयोनट से
सूंघ-सूंघकर मुझ में से सन्देह

भेजा जाता रहा है मुझे
कतार बनाकर बाड़ों में
कह ही दिया है
कभी किसी ने बाड़ों को यातना शिविर
उसकी पीठ पर भी
खोभ दी है इन्होंने अपनी नाराज़गी,
शिविर
अपराधियों का हो अथवा
देश-बदर लोगों का
लटकता रहा है
गैर जरूरी लोगों के नाम पर
मेरा होना
इनकी मरजी के कच्चे धागे पर
अपराधी या फिर शरणार्थी
हो ही गया हूँ ज़मात
तोड़ी तो जाती रही है मेरी सांस
पर नहीं छूटा है
फिर भी मुझसे
आदम जात और जमात बन कर
बोल जाने का संस्कार
नशा कहूँ
या संस्कार की लाचारी
एक केवल एक
बोलने के तेवर पर ही
बना दिया गया हूँ हजार-हजार की गिनती में
खूराक दो मीटर चौड़े चैम्बर की;

देखना चाहा ही नहीं इन्होंने
धूप सा सच मुझ पर
टेंकरों जेटों की
भाषा के महापंडित
कैसे सुनें समझें मेरी बोली;
गवाह है
खोह से चाँद तक जा पहुँची
सभ्यता का इतिहास
कभी नही चाहा है
मैंने इनसे
सोने का तख्त कोई ताबूत
बरफ का पहाड़
हथेली भर ही तो चौड़ी रही है थाली
क्यों माँगता
मछलियों से भरा समंदर
तेल के कूए
सपना ही नही लिया कभी
जमींदोज घर का
बना मिटा दिए देश इन्होंने
मेरा घर बनाने की फिक्र में
परोसते आए है मुझे दहशत
खाता हुआ
तमतमालिया है कभी लहू
तन ही गई है नसें
तो किच खटाक बजा कर ही
निकाल लिया है बाहर

पेदी से भेजे तक का मेरा सब कुछ
श्रोर मांज गए है
अपने तलवे
चकता भी न रहे जमीन पर
मेरे होने का;
बनाए रखने
सत्ता श्रौर राज
पहनते रहे है ये
ये... वे...श्रंगरखे
बिलबिलाए है जब भी सुख की मार से
बटोरने लग गए है
सोना...पत्थर...जमीन...
श्रौर देख कर मुझे दूर से ही
लग गए है दुहराने
वैष्णव जन तो तैने कहिए......
परिणाम
बनाए रखना इन्द्रपुरियां, पेरिसपुरियां;
तब बच रहता है मेरे लिए
तहाते रहना तुम्हारे प्रश्नाते पत्र
तिलतिल ऊँचाया करूँ
इनकी बनाई खंदकें
देखलिया करूँ उभक-उभक कर
तुम्हें एक यात्रा
इस तरह ही अनुमान जाश्रो तुम कि
जलती हुई भट्ठी है नीचे
श्रौर ऊपर

त्रिवशनाओं मे
पेंच पेंच दिया गया मैं
मेरा संसार...
न उठा सके जिसमे
जलती हुई एक भी लकड़ी
पहाड़ से सीधे
अपनी पैदाइश बतानेवाले
गलाज़त की व्यवस्था
झोंस देने की
भंगिमा में ही हो गया उन्हें इल्हाम
अपने खतरे का
और बचा गए
पिघल जाने से
अपना पत्थर रंग मोम ही मोम.
भीतर बाहर का
ठंडे मुल्कों से भी आया किए
शौकीन घुमक्कड़
ताप-ताप गए दूर से ही
करिश्मों का यह सरकस
हो जाने दिया गया
भाप ही भाप
सैलाब होकर
जिया चाहने वाले
ज़िन्दगी के मोह को
मोच-मोच दी गई
साथ केवल साथ
कतार लिए जाने की एषणा;

और होता रहे
यही यही मुझसे तुम्हारे साथ
और मेरे साथ तुमसे !
न दिखा पाएं, मैं तुम
एक ही चाकू से
छील छील दिए जाते शरीर !
न दागे, मैं तुम
अपनी हथेलियों से
इनकी बुर्राक चादर !
न हवाएं, एक सांस
मैं तुम
धुआं धुआं दिए जाते
अपने कोयले !
दोस्त मेरे ?
नियति नहीं माना है मैंने
इस तरह
घट घट जाया करते
सब कुछ को;
सुनो ! मुझ जैसी दुनियाओं से
मुझे दरारते रहनेवालो,
अजूबा बनाए रखने मुझे
इन्द्रजाल
फेंकते रहनेवाले तांत्रिको,
और तुम भी
मेरे और मेरे समय को
निहायत निहायत जरूरत होकर

झूलते रहने वाले
बदलाव के तकाजों,
और अर्थवेद से अज्ञानी रह गए
मेरे जीवित रहने के
अधिकार को
अपनी महारत के जूए में
जकड़े रहने वाले परम भट्टारको सुनो
नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा
त्वत्प्रसादान्मया च्युत
स्थितोऽस्मि गत सन्देह
करिष्ये वचनंतव;

लो, प्रारम्भ दिया है
मैंने तोड़ना
तुम मुझ में अब तक
पसरा किया असंवाद
एक ठंडा चुप
खोल-खोलकर किवाड़
तुम्हारे और मेरे
बोलने लगा हूँ
अपना संज्ञातीत लगाव
रेत की तरह
झाड़ दिए जाने को नहीं
पहनने लगा हूँ
शरीर दर शरीर होकर
तुम मुझ जैसे
संसार ही संसार कि
मुझ से ही बोल जाए

उनकी चिति
उनकी ऊर्जा का पौरुष
हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा भोक्ष्य से महीम
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय
युद्धाय कृत निश्चय;

और प्रकट जाऊँ
किसी भी क्षण
उन्हीं का अंशी मैं
निरीह धीरज से
डूब-डूब रहे
अपने भूगोल को
सूरज के सामने ला रखने वाला
वराहवतार होकर

नहीं, नहीं देनी है मुझे
एक भी आवाज
अब किसी पहलुए को
नहीं रही है प्रतीक्षा
अब किसी हरावल की
नहीं सुननी है मझे
अब कोई आकाशवाणी
नहीं पढ़ना है मुझे अब
जब-तब छाप दिया जाता
अखबार में
मेरे नाम पर उनका घोषणा पत्तर
और न ही समझाना है उन्हें

मेरे ही लिए बने विधान
और कानून का भाष्य,
देखो, टूट गया है
मेरा ठहराव
और सम्बोधित हो गया है
उबलाव को
आखिरी हद छूता हुआ
मेरा वर्तमान
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ
यशोलभस्व
जित्वा शत्रून्भुङक्ष्व समृद्धम्
मयैवैते निहिता पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन;

स्वयंभू नियंताओं से
छीन कर रासें
अपने विराट
विराट संसार की
अपने वर्तमान
अपने भविष्य का
खुदकर्ता हो जाने पर
आमादा मैं दे दिया चाहता हूँ
साल हा साल से
मुझे पकाते रहने वालों को
तप-तपकर पक जाने का स्वाद

न रगड़ो तुम भी
चकमक पत्थर मुझ पर

न ही दो अपने हाथों
किसी ईंधन की
हवि मुझे
विस्फूटने को ही है
मेरे भीतर से एक ज्वालामुखी
अगियाया हुआ
फिरूँगा राजमार्गों पर मैं
फेंकूँगा पलीते
उनको ऊँचाइयों तक
बह-बह जाएगा मेरा लावा
इनकी बाँबियों
इनकी बुनियाद की
आखिरी तह तक,

दहाने पर दहाना होकर
चोट रहा है
बाँधी हुई हदें
मेरा आवेश का दरिया
डुबो आने
ढेर का ढेर
यह कूड़ा
माना जाता रहा है जिसे
अब तक इतिहास
इसी पर तो उगते रहे हैं
पिरेमिड और लाट
उड़ाए जाते रहे हैं यहीं से
आदमदार अपोलो सोयूज
मिसाइलें तश्तरियाँ न जानें क्या-क्या...!

उड़ाया नहीं गया तो केवल मैं
माँडा ही नहीं गया
कहीं पर भी मुझे,
मिटाया ही जाता रहा है
मेरे होते रहने का एक एक जतन
और अब
मुझे ही बताना है अपना होना
मुझे ही बनना है
आदमी के लिए
आदमी की सभ्यता, उसकी संस्कृति

और जब करने लगूँगा रचाव
आदमी : आरम्भ
मुझ जैसी दुनियाओं के लिए
हमखयाल अजीज़ !
तुम्हें ही दूँगा आवाज़
संयोग लिए
गर्भा लिए जाने मेरे वर्तमान से
समय नहीं
शरीर नहीं
रोशनी ! शब्द ! सम्बोधन !

०००

सन्दर्भ

सन्दर्भ

पृ० १५ गीता : ५-११

कर्मयोगी व्यक्तिगत स्वार्थ और इन्द्रियों, मन, शरीर, विवेक से भी अनासक्त रहते हुए द्वैत के भाव से अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखने के लिए ही कर्म करते हैं।

पृ० २६ वराहमिहिर, आर्यभट्ट

गुप्तकालीन भारतीय गणितज्ञ।

पृ० २६ अलबेरूनी

अरब गणितज्ञ।

पृ० २६ जयंत नार्लीकर

छठे दशक के प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ।

पृ० २७ ओनासिस

यूनानी अरबपति, जैकेलिन कैनेडी से विवाह करने के कारण अधिक प्रख्यात।

पृ० ३१ अलबर्ट आइन्स्टीन

वीसवी शताब्दी के महान दार्शनिक, गणितज्ञ, सापेक्षता सिद्धान्त के प्रतिपादक।

पृ० ३१ बरट्रंड रसल

इस शताब्दी के प्रखर चिंतक और गणितज्ञ।

पृ० ३३ मियादी हुंडी

व्यापार-प्रकिया मे निश्चित समय मे रुपया देने का पत्र।

पृ० ३४ ओसामू दजाई

जापान के कवि जिन्होंने तनाव की मन स्थिति में आत्महत्या की।

पृ० ३४ एदित

इन्दोनेशिया में साम्यवादी आन्दोलन के अगुआ।

पृ० ३४ हीराकीरी

जापानी शब्द; आत्महत्या।

पृ० ४१ एम्पायर स्टेट बिल्डिंग

न्यूयार्क स्थित १४७५ फिट ऊँचा और १०२ मंजिल का भवन।

पृ० ४२ ऊथां

छठे दशक मे संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव, वर्मा निवासी।

पृ० ४४ कल्लोल, तीर, अंगार

वंगला भाषा के वहुचर्चित नाटक।

पृ० ४५ रोमिला थापर

छठे-सातवें दशक में प्राचीन भारतीय इतिहास को अन्वेषित रूप में प्रस्तुत करने वालों में चर्चित इतिहास लेखिका।

पृ० ४५ कुकड़ूकूँ

कोटा (राज०) के शिवराम द्वारा रचित राजनैतिक व्यंग नाटक।

पृ० ४६ सर्वे भवन्तु सुखिना

सभी सुखी हों।

पृ० ५० सोलोमन

९७०-९३१ बी० सी०। इस्लामी साहित्य में चर्चित, अपनी पत्नियों को धार्मिक स्वतन्त्रता देने वाला, पुराकथाओं का विवेकशील नायक।

पृ० ५० सीजर

रोम का राजनीतिज्ञ, योद्धा शासक। १०२-४४ बी० सी०।

पृ० ५० मुसोलिनी

इटली का तानाशाह, दूसरे महायुद्ध के धुरी राष्ट्रों का सहयोगी। १८८३-१९४५।

पृ० ५० तोजो

जापान का सैनिक तानाशाह।

पृ० ५१ गायबल्स

झूठे प्रचार के लिए विश्व में प्रसिद्ध हिटलर का प्रचारमंत्री।

पृ० ५१ मैकार्थी

प्रतिगामी अमरीकी राजनयिक।

पृ० ५१ सालाजार

पुर्तगाल का तानाशाह शासक अर्थशास्त्री, १८८९-१९७०।

पृ० ५१ जे० एफ० डलेस

प्रतिगामी अमरीकी राजनयिक।

पृ० ५२ गीता : १८-६६

कृष्ण अर्जुन से सम्बोधित—तू समस्त धर्मो का त्याग कर केवल मेरी अनन्य शरण मे आ जा। मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त करूँगा, तू शोक मत कर।

पृ० ५३ शिखण्डी

महाभारत का एक पात्र, पांचाल प्रदेश के राजा द्रुपद का पुत्र, पूर्वजन्म मे अम्बा नाम की लड़की जिसने भीष्म द्वारा अस्वीकार किए जाने पर आत्मदाह कर लिया। इसी कारण भीष्म ने युद्ध मे इस पर शस्त्र नही चलाया, अर्जुन ने इसे ही आगे रखकर भीष्म को पराजित किया।

पृ० ५३ बृहन्नला

महाभारत का प्रमुख पात्र, अर्जुन को एक वर्ष के अज्ञातवास मे राजा विराट के महल मे नृत्य प्रशिक्षक के रूप मे इसी नाम से स्त्रैण वेष मे रहना पडा था।

पृ० ५७ चार्वाक

प्राचीन भारतीय भौतिकवादी दर्शन की सुखवादी चिंतनधारा के प्रणेता ऋषि।

पृ० ५७ **फायरबाख**

१९वीं सदी के जर्मन चिंतक, भौतिकवादी और अर्थ-शास्त्री।

पृ० ५८ **अवेस्ता**

ईरानी पारसियों के आराध्य जरथुस्त्र द्वारा रचित गाथाओं, उपदेशों और भविष्यवाणियों का धर्मग्रंथ।

पृ० ५९ **कन्फ्यूशियस**

हिन्दचीन, कोरिया और जापान तक व्यापक चीनी दार्शनिक, उपदेशक, गौतम बुद्ध के समकालीन। ५५१-४७९ बी० सी०।

पृ० ६१ **आबे जमज़म**

मक्का के एक कुए का पानी। इस्लामी पुराकथाओं के अनुसार पवित्र पानी।

पृ० ६९ **लीलावती**

प्राचीन काल की भारतीय महिला गणितज्ञ; कई उल्लेखों के अनुसार गणित का ग्रंथ।

पृ० ७४ **बर्बरीक**

महाभारत का एक पात्र। भीम का पौत्र, घटोत्कच का पुत्र। अनुपम युद्ध कौशल का धनी, धरती की पूजा और बलि के नाम पर युद्ध से पूर्व ही मार दिया गया; लेकिन युद्ध देखने की इच्छापूर्ति हेतु इसकी गर्दन को ऊँची चोटी पर रख दिया गया, कौरवों द्वारा ही नहीं पांडवों द्वारा भी युद्धाचार भंग किए जाने पर गर्दन का युद्ध में भाग लेने का उल्लेख महाभारत के लोक प्रचलित रूप में मिलता है।

पृ० ७६ हिरोशिमा, नागासाकी

जापान के दो शहर; दूसरे महायुद्ध मे ६ और ६ अगस्त १६४५ को इन दोनो शहरों पर अणुबम गिराए गए।

पृ० ८८ गीता : १८-७३

मेरे मोह नष्ट हो गए है, मुझे अपने वास्तविक रूप और कर्त्तव्य का बोध हो गया है, अब मैं संशयों से मुक्त हूँ और आपके कथनानुसार अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने को तत्पर हूँ।

पृ० ८६ गीता : २-३७

अपने कर्त्तव्य-निर्वाह मे कुंठा, सशय और तनावरहित मन.स्थिति से विसर्जित होना ही सबसे बड़े सुख (स्वर्ग) को प्राप्त करना है—तू मरता है तो स्वर्ग की प्राप्ति होगी और यदि विजयी होता है तो राज्य और वैभव का भोग करेगा, कुन्तीपुत्र अर्जुन ! निश्चय कर युद्ध के लिए तत्पर हो।

पृ० ६० गीता : ११-३३

दुष्ट मनुष्य अपने कर्मों से ही मरते है, इन्हें अपने कर्मों के कारण मरना ही है, तुम्हें तो इनकी मृत्यु का निमित्त (माध्यम) मात्र बनना है। तू उठ, यश प्राप्त कर, शत्रुओं को पराजित कर समृद्धि, राज्य और वैभव प्राप्त कर।

□ □ □

बकलम हरीश भादानी

11 जून 1933 को हवेली में जन्म, धारक-पोषक दोनों अनुपस्थित। कृपात्मक-मर्यादित पोषण से बने भटकाव ने रेडिकलसोचकों के किनारे ला छोड़ा। वजनी शब्दों में सड़काऊ बातें सुनी तो जुनून में हवेली की आखिरी सीढ़ी भी उतर आया। सड़क पर नारे थे, जुलूस, पर्चे, अखबार, पुलिस, जेल, बहसें, बड़ी-बड़ी योजनाएं, टैक्नीकलर सपने·· और भी बहुत कुछ था···इस बहाव में बी. ए., आधे एम. ए. और कविता ही हाथ लगी।

1961-73 तक वातायन मासिक का सम्पादन-प्रकाशन, और जुड़ गया वैचारिक पक्षधरता और सम्प्रेषण की अनिवार्यता का आग्रह। बम्बई-कलकत्ता में कलमी मजूरी, आदिम से आदमी तक (कथा-संकलन) संकल्प स्वरों के (काव्य-संकलन) का संपादन, अधूरेगीत-1959, सपन की गली-1961 हंसिनी याद की-1962

सुलगते पिण्ड, उजली नजर की सुई-1966, और तेरह वर्ष बाद अब···नष्टो मोह··· प्रौढ़शिक्षा-साहित्य के सम्पादन-लेखन में टिकने का यत्न······